ॐ

# विनय-पत्रिका-सार सटीक

卐 टीकाकार 卐

महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज

अखिल भारतीय संतमत-सत्संग-प्रकाशन

प्रकाशक
अखिल भारतीय
संतमत-सत्संग-प्रकाशन-समिति
महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट
पत्रालय : बरारी, भागलपुर, बिहार ( भारत )

❄

सर्वाधिकार सुरक्षित

❄

त्रयोदश संस्करण : २५०० प्रतियाँ, संवत् २०६२ वि०, २००५ ई०
षोडश संस्करण : २५०० प्रतियाँ, संवत् २०७४ वि०, २०१७ ई०

सहयोग राशि : १० रुपये

मुद्रक
शान्ति-सन्देश प्रेस
महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर-३
बिहार ( भारत )

# प्रकाशकीय

आधुनिक संत-साहित्य के शीर्ष विद्वानों ने आध्यात्मिक स्थितियों के दो बौद्धिक विकल्प निश्चित कर रखे हैं—सगुण और निर्गुण। सगुणोपासक तथा निर्गुणोपासक का अलग-अलग स्वतंत्र सर्वोच्च एवं सर्वांगपूर्ण लक्ष्य एवं भिन्न-भिन्न साधना- विधि भी उन्होंने निर्धारित कर रखी है—मान रखी है। ऐसा करके वे विद्वद्वर्ग सगुणोपासकों को भक्त तथा निर्गुणोपासकों को संत नाम से अभिहित करना ठीक समझते हैं। ये सारे-के-सारे निर्णय उन्होंने अपनी बौद्धिक प्रतिभा, तीक्ष्ण कल्पना, विशाल अध्ययन और गंभीर चिन्तन-मनन के बल पर—आधार पर दे रखे हैं। इन निर्णयों में सच्चे संतों की संगति—सत्संगति और साधना—उपासना का एकान्त अभाव रहता है। इसीलिए आध्यात्मिक साधकों को उनकी वाणियों में 'अंधकार में टटोलने की गंध' आती है और मार्ग-दर्शन और साधन-संबल की आशा, रिक्त हृदय से वापस लौट आती है। ऐसे निराश साधकों को गोस्वामी तुलसीदासजी की 'विनय-पत्रिका' के प्रच्छन्न और योग-रहस्यावरणित पद उद्घाटित हो जाने से सुधा-सिञ्चित आलोक-माला-सा मार्ग-दर्शक ही प्रतीत होगा और सत्यान्वेषी विनयशील विद्वान भी अपने प्राप्त विद्या-प्रकाश को इस अनुभव-ज्ञान की दिव्य दीप्ति से उज्ज्वलित और परिमार्जित कर परिशुद्ध सत्य को अधिक शक्तिशालिता के साथ अपना सकेंगे।

आध्यात्मिक अनुभव-ज्ञान की ज्योति-साया में बैठकर सभी जिज्ञासु अपनी बौद्धिक चेतना में यह धारण करने में समर्थ होंगे कि जगत में पुरुष के क्रमोन्नत तीन रूप हैं, जो श्रीमद्भगवद्गीता में क्षर पुरुष, अक्षर पुरुष और पुरुषोत्तम नाम से अभिहित किए गए हैं। तीनों गुणों (सत्त्व, रज और तम) के

सहित रूप को सगुण और इन तीन गुणों से रहित, किन्तु सत्-चित्-आनन्द गुणों-सहित रूप को निर्गुण और इन दोनों रूपों से भी उत्तम, उनका जो अपना सत्य रूप है, उसे पुरुषोत्तम कहा गया है। इन सगुण और निर्गुण रूपों को हम 'अपरा' और 'परा' प्रकृति भी कह सकते हैं और महर्षि मेँहीँ-वाणी में कह सकते हैं–

**ये प्रकृति द्वय उत्पत्ति लय, होवैं प्रभु की मौज से ।**
**ये अजा अनाद्या स्वयं हैं, हरगिज न कहना चाहिये ।।**

इसे धारण कर लेने पर हमारी प्रज्ञा-शक्ति यह भली भाँति समझ सकेगी कि पूर्ण भक्त, पूर्ण योगी, पूर्ण कर्मयोगी एवं पूर्ण ज्ञान-योगी ही ब्रह्मज्ञानी, आत्मज्ञानी, निर्वाण-प्राप्त, अनुभवज्ञानी, तत्त्व ज्ञानी, ऋषि, बुद्ध, अर्हत, जिन, संत आदि नामों से वर्णित होते हैं और शब्द-भेद के अतिरिक्त इनमें जरा भी अर्थ-भेद–तत्त्व-भेद नहीं है। यह प्रज्ञा विकसित होते ही यह तथ्य भली भाँति समक्ष में आ जाएगा कि सगुणोपासना के द्वारा ही हम निर्गुणोपासना की योग्यता प्राप्त कर सकते हैं और निर्गुणोपासना की पूर्णता पर ही आत्म या परमात्म-साक्षात्कार कर कोई भी संत या ऋषि हो सकते हैं।

जिन्होंने सगुण-निर्गुणातीत परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति कर ली है, ऐसे महान पुरुषों को 'भक्त' शब्द का कल्पित अर्थ बनाकर उन्हें सगुणोपासक की सीमा में ही आबद्ध बताना अवश्य ही एक अपराध है। पूर्ण भक्तिन शवरी को कौन भक्त कहने से रोक सकता है ? क्योंकि उसके बारे में स्वयं भगवान रामचन्द्रजी ने कहा है–'सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे' और यह शवरी उस लोक को गई, जहाँ जाने से कोई आवागमन के बेबसी-भरे चक्र से सदा के लिए मुक्त हो जाता है।

**'तजि योग पावक देह हरिपद लीन भई जहँ नहिं फिरे ।'**

**–रामचरितमानस**

**'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।'** **–गीता**

**'जौं जल में जल पैठि न निकसे, यों ढुरि मिला जुलाहा ।'**

**–सन्त कबीर साहब**

ऊपर वर्णित पद या स्थिति गोस्वामी तुलसीदासजी को प्राप्त नहीं थी, उन्हें जटायु और राजा दशरथवाली भक्ति की स्थिति ही उपलब्ध थी–ऐसा माननेवाले विद्वानों को अवश्य ही 'विनय-पत्रिका-सार सटीक' के अध्ययन-मनन से नवज्ञानोन्मेष होगा और वे गोस्वामी तुलसीदासजी को भी पूर्ण भक्त, ऋषि और संत मानकर उनकी निम्नोक्त वाणी को मन-ही-मन गुनगुनाते रहेंगे।

**सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि योगी ।**
**सोइ हरि पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत-वियोगी ।।**
**सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं ।**
**तुलसिदास एहि दसा-हीन, संशय निर्मूल न जाहीं ।।**

देश-काल जहाँ नहीं है, ऐसे द्वैत से रहित पद या स्थिति को पाकर ही गोस्वामी तुलसीदासजी ने बलवती वाणी में यह लिख दिया कि इस पद को प्राप्त किए बिना किसी का भी सर्वसंशय निर्मूल नहीं हो सकता।

तमस् के भ्रमाच्छादनों को भंग कर सत्य का प्रचण्ड प्रकाश, प्रेमी जिज्ञासुओं के हृदय में प्रभु-भक्ति की सुधा-धारा बनकर बह सके, यही आशा-अभिलाषा लेकर महर्षिजी रचित 'विनय-पत्रिका- सार सटीक' का प्रकाशन अखिल भारतीय संतमत-सत्संग-प्रकाशन की ओर से किया गया है। आशा है, सत्संग-प्रेमी सज्जन इसे अपनाकर लाभ उठावेंगे।

अ० भा० संतमत-सत्संग-प्रकाशन-समिति

संवत् २०२२ वि०

# भूमिका

यह बात विख्यात है कि 'विनय-पत्रिका' गोसाईं तुलसीदासजी महाराज का अन्तिम ग्रंथ है। यह उनके निज विचारों और अनुभवों से भरा हुआ है। गोसाईंजी महाराज ने 'रामचरितमानस' को 'सद्‌गुरु ज्ञान विराग जोग के' कहकर उसे योग का सद्‌गुरु बतलाया है। यदि ग्रंथकर्ता स्वयं योग का सद्‌गुरु न हो, तो उनका ग्रंथ योग का सद्‌गुरु कैसे हो सकता है ? गोस्वामीजी महाराज योग के सद्‌गुरु थे, इस बात को उनकी 'विनय-पत्रिका' भली भाँति सिद्ध कर देती है। योग, वैराग्य, ज्ञान और भक्ति को प्रेम के अत्यन्त मधुर रस में पागकर बने हुए अत्युत्तम मोदक 'विनय-पत्रिका' में भरे पड़े हैं, जो भव-रोगों से ग्रसित दुर्बल और आत्म-बलहीन जीवों के लिए अत्यन्त पुष्टिकर हैं। गोस्वामीजी महाराज प्राचीन काल के नारद, सनकादिक और परम भक्तिन शवरी की तरह के और आधुनिक काल के कबीर साहब और गुरु नानक इत्यादि संतों की तरह के भक्ति की चरम सीमा तक पहुँचे हुए, योग और ज्ञानयुक्त भक्ति में परिपूर्ण और निर्मल सन्त थे। ऐसे सन्त के अन्तिम ग्रन्थ में उनकी अन्तिम गति का भाव अवश्य ही वर्णित होगा। इसी भाव को जानने और उसे संसार के सामने प्रकाश करने के लिए यह 'विनय-पत्रिका-सार सटीक' लिखने का मैंने प्रयास किया है। इससे गोस्वामीजी महाराज की अन्तिम गति का और उस गति तक पहुँचने के मार्ग का पता लग जाता है। इस मार्ग को जानकर यदि मनुष्य इसपर चले, तो अन्त में गोस्वामीजी महाराज की तरह परम कल्याण पा सके। मनुष्य के लिए इससे बढ़कर लाभ दूसरा नहीं हो सकता। मैं विद्वान नहीं हूँ। केवल एक तुच्छ सत्संगी हूँ। सत्संग के द्वारा

जो स्वल्प मात्र बूझ-सूझ प्राप्त है, उसी के सहारे 'विनय-पत्रिका-सार सटीक' को संसार के सामने उसकी सेवा करने के लिए रखता हूँ।

कितने लोगों का यह विश्वास है कि प्राचीन काल के सनकादिक, देव-ऋषि नारद, कागभुशुण्डि और शवरी आदि की तरह सन्त, कलिधर्म के कारण इस युग में नहीं हो सकते। इसके उत्तर में गोस्वामीजी महाराज स्वयं ही कहते हैं कि 'काल धर्म्म नहिं व्यापहिं तेही। रघुपति चरन प्रीति अति जेही।।' (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड) और कुछ स्वल्प संख्यक लोग बहुत भद्दी-सी यह बात कहते हैं कि 'परम संत कबीर साहब और गुरु नानक साहब आदि सन्तों की तरह ऊँची गति गोस्वामीजी महाराज की नहीं थी।' देश-कालातीत, अतिशय द्वैतहीन, त्रयवर्ग पर परमपद और सगुण शब्दब्रह्मैकपर ब्रह्मज्ञानी का वर्णन 'विनय-पत्रिका' में गोस्वामीजी महाराज करते हैं, उससे आगे कोई विशेष पद है, जहाँ की गति कबीर साहब आदि संतों की थी और गोस्वामीजी महाराज की नहीं, युक्ति-संगत बात नहीं जँचती।

अपने को विद्वान माननेवाले कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो कबीर साहब ही को हेय दृष्टि से और गोस्वामीजी महाराज को ऊँची निगाह से देखते हैं। पर लोकमान्य बालगंगाधर तिलक अपने 'गीता-रहस्य' के अध्यात्म-प्रकरण में इस भाँति लिखकर कबीर साहब और गोस्वामीजी महाराज को सम गति के सिद्ध कर देते हैं; यथा-'उपर्युक्त विवेचन से विदित होगा कि सारे मोक्ष-धर्म के मूलभूत अध्यात्मज्ञान की परम्परा हमारे यहाँ उपनिषदों से लगाकर ज्ञानेश्वर, तुकाराम, रामदास, कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास इत्यादि आधुनिक साधु पुरुषों तक किस प्रकार अव्याहत चली आ

रही है।'

गुरु, अवतार, देवता और देवी आदि अनेक उपास्यों में पृथक्त्व केवल शरीरों में ही है, आत्मा में नहीं। भक्ति के उत्तम साधन से आत्मा तक पहुँचने पर उपासकों की गतियों में अन्तर कहाँ रहा? उपासना की इसी उत्तम विधि का पता इस 'विनय-पत्रिका-सार सटीक' में खोलकर बतलाया गया है। पाठकों से मेरा नम्र निवेदन है कि इसको सिलसिले के साथ ओर से छोर तक पढ़ें। इसको ठीक-ठीक समझने के लिए 'रामचरितमानस-सार सटीक' के विचारों को भी जानने की बड़ी आवश्यकता है। इसमें लिखित मेरी भाषा को जहाँ तक हो सकता है, सुधारने के लिए मैं श्रीमान् बाबू दामोदर सहाय सिंह, एल० टी० (कविकिंकर) डिप्टी इंसपेक्टर, स्कूल समूह, डिविजन अररिया, जिला पुरैनियाँ को तथा ग्राम-समेली, जिला-पुरैनियाँ निवासी श्रीमान् बाबू अनूपलाल मंडल (साहित्यरत्न) जी को अनेकानेक हार्दिक धन्यवाद देता हूँ!

**सत्संग-सेवक**

**मेँहीँ**

**१९-९-१९३१ ई०**

# विनय-पत्रिका-सार सटीक

## मंगलाचरण

**दोहा—मंगल मूरति सतगुरू, मिलवैं सर्वाधार।**
**मंगलमय मंगल करण, विनवौं बारम्बार ॥**

**( १ )**

**ऐसी आरती राम की करहि मन।**
**हरन दुख द्वन्द्व गोविन्द आनन्द घन ॥१॥**

गोविन्द = ज्ञान-सिन्धु (मानस-कोष)।

हे मन ! दु:ख और कलह के हरनेवाले, ज्ञान-सिन्धु और आनन्दपुञ्ज राम की आरती इस तरह कर।

**अचर चर रूप हरि सर्व गत सर्वदा,**
**बसत इति वासना धूप दीजै।**
**दीप निज बोध गत क्रोध मद मोह तम,**
**प्रौढ़ अभिमान चित्तवृत्ति छीजै ॥२॥**

अचर = स्थावर = नहीं चलनेवाला, जैसे वृक्षादि। चर = जङ्गम = चलनेवाला, जैसे मनुष्यादि। गत = लीन = तन्मय, निमग्न। निजबोध = आत्मज्ञान।

स्थावर-जंगम सब रूप राम के हैं और वे सबमें लीन हैं—सर्वव्यापी हैं, इसी इच्छा का धूप दीजिए। आत्मज्ञान का

दीपक दीजिए, जिससे क्रोध, मस्ती और अज्ञान-अन्धकार नष्ट होकर बढ़ा हुआ अभिमान और चित्त की चंचलता नाश होती है।।२।।

**भाव अतिसय विसद प्रवर नैवेद्य सुभ,**
**श्री रमन परम सन्तोषकारी।**
**प्रेम ताम्बूल गत सूल संसय सकल,**
**विपुल भव वासना बीज हारी।।३।।**

विसद (विशद) = विशुद्ध। प्रवर = उत्तम। हारी = हरनेवाला।

अत्यन्त शुद्ध प्रेम का उत्तम और शुभ नैवेद्य और प्रेम ही का पान भोग लगाइए, जिनसे लक्ष्मीपति परम संतुष्ट होते हैं, सम्पूर्ण कष्ट और संदेह दूर होते हैं और जो संसार के बीज, बहुत-सी इच्छाओं को हरनेवाले हैं।।३।।

**असुभ-सुभ कर्म घृत पूर्न दस बर्त्तिका,**
**त्याग-पावक सतोगुन प्रकासं।**
**भक्ति वैराग्य विज्ञान दीपावली,**
**अर्पि नीराञ्जनं जग निवासं।।४।।**

नीराञ्जनं = आरती।

भक्ति, वैराग्य और विज्ञान के दीपों में शुभ-अशुभ कर्मरूपी घी से भरी हुई दस बत्तियों को त्याग की अग्नि से लेसकर सतोगुण की प्रकाशवाली आरती राम को अर्पण कीजिए।।४।।

**विमल हृदि भवन कृत सान्ति परजङ्क सुभ,**
**सयन विस्राम श्रीराम राया।**
**छमा करुना प्रमुख तत्र परिचारिका,**
**यत्र हरि तत्र नहिं भेद माया।।५।।**

पवित्र हृदय-भवन में शान्ति के सुन्दर पलङ्ग पर आराम करने के लिए श्रीराम राय को सुलाइए। वहाँ राम की सेवा के लिए क्षमा और दया मुख्य-मुख्य दासियों को रखिए। जहाँ राम (उपर्युक्त रीति से) रहेंगे, वहाँ द्वैत उत्पन्न करनेवाली माया नहीं रहेगी।।५।।

**आरती निरत सनकादि स्त्रुति सेष सिव,**
**देवरिषि अखिल मुनि तत्त्व दरसी।**
**जो करइ सो तरइ परिहरइ काम सब,**
**वदत इति अमल मति दास तुलसी।।६।।**

इस आरती में सनकादि, वेद, शेष, शिव, नारद और सार पदार्थ (निर्माया) में दर्शन करनेवाले समस्त मुनिगण विशेष रूप से रत रहते हैं। सब इच्छाओं को छोड़कर जो इस प्रकार आरती करेगा, वह मुक्त होगा। हे तुलसीदास ! निर्मल बुद्धिवाले ऐसा कहते हैं।।६।।

**भावार्थ**–जो भवसागर से पार होना चाहे, उसे चाहिए कि राम को सम्पूर्ण रीति से संतुष्ट करने के हेतु उन्हें अपने अन्तर की शांति के पलङ्ग पर प्रत्यक्ष पाने के लिए (१) उन्हें (राम को) सर्वरूपी और सर्वव्यापी दृढ़ता से जाने, (२) आत्मज्ञान प्राप्त करे, (३) राम से अत्यन्त प्रेम करे, (४) दसो इन्द्रियों की वृत्तियाँ वा चेतनधारें शुभाशुभ कर्मों से सराबोर

रहती हैं, उन्हें विषयों से हटाकर अर्थात् त्याग की अग्नि से दग्ध करके सतोगुण को धारण कर भक्ति, वैराग्य और विज्ञान प्राप्त करे, (५) क्षमा और दया को धारण करे और (६) सब इच्छाओं को त्याग दे।

**विचार**–गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज इसी कलिकाल में थे। जबकि वे अपने मन को उपर्युक्त रीति से राम की आरती करने कहते हैं, और जबकि वे यह भी कहते हैं कि जो कोई (अर्थात् कोई भी मनुष्य) इस प्रकार राम की आरती करेगा, वह तर जाएगा अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेगा, तब गोस्वामीजी महाराज के विचारानुसार कलियुग में भी राम की योगाभ्यास से होनेवाली ऐसी आध्यात्मिक आरती होती है और होगी। जो कोई इसे करना चाहेगा, करने में लग जाएगा, वह कर लेगा। स्त्री, शूद्र, चाण्डालादि, गृहस्थ, विरक्त; सब-के-सब इस आरती के करने के अधिकारी हैं। राम को सर्वगत कहकर उनके निर्गुण स्वरूप का और उन्हें चर-अचर-रूप कहकर, उनके सगुण रूप का वर्णन कर, उनके इन दोनों स्वरूपों में रत रहने को कहा गया है। निर्गुण सर्वव्यापी स्वरूप राम का अरूप, इन्द्रियों से नहीं जानने योग्य, मूल सनातन और सहज स्वरूप वा निज स्वरूप है और सगुण रूप उनका कारणवश प्रगट होनेवाला, अगुण से पीछे का रूपमान स्थूल-सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदों से, इन्द्रियों से जानने योग्य भी और उनसे नहीं जानने योग्य भी माया वा छल-रूप है। (रा० च० मा० सा० स०, चौ० सं० १६८ को और दो० सं० ११३ को अर्थ और लिखित विचारों के सहित पढ़िए) निर्गुण स्वरूप में और

सगुण के सूक्ष्म और सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूपों में, उनकी निसबत केवल पढ़, सुन और विचारकर रत होना, केवल कठिन साध्य ही नहीं, बल्कि असम्भव है। (देखिए पद्य ७) जब चेतन-वृत्ति वा सुरत का पसार स्थूल शरीर में रहकर स्थूल इन्द्रियों के द्वारा काम करता रहता है, तब स्थूल सगुण में रत होना सम्भव होता है। इसी तरह सूक्ष्म भक्ति के साधन से सुरत को स्थूल शरीर से समेटकर और स्थूल इन्द्रियों के द्वारा काम करना छोड़कर जब केवल सूक्ष्म शरीर ही में उसका पसार रहेगा और स्थूल-विहीन केवल सूक्ष्म शरीर से ही काम करना सम्भव होगा, तब सूक्ष्म सगुण में और इसी भाँति जब सूक्ष्म से भी सिमटकर, आगे बढ़कर केवल कारण शरीर ही में सुरत का पसार रहेगा और उसके द्वारा कर्म किया जा सकेगा, तब सूक्ष्मातिसूक्ष्म सगुण में रत होते हुए, फिर कारण से भी सिमटकर सुरत वा चैतन्य वृत्ति को आत्मस्वरूप में लय कर, निर्गुण स्वरूप में रत होना अत्यन्त संभव है। रा० च० मा० सा० स० में वर्णित नवधा भक्ति राम की इस प्रकार की आरती करने का वा उसके सगुण और निर्गुणस्वरूपों में रत होने का और आत्मज्ञान प्राप्त करने का साधन है। सगुण राम की उपासना के बाद आत्मज्ञान प्राप्त होता है। इसके प्राप्त होने पर राम के निर्गुण स्वरूप में रत होना बाकी नहीं रहता। भक्ति के साधन का अन्त निज रूप वा आत्मस्वरूप वा निर्गुण राम में रत होने तक ही है। (पद्य ९) ध्यान, उपासना, आरती, पूजन, भजन और भक्ति का प्राण, प्रेम है। राम के प्रति प्रेम बिना ये निःसार और निरर्थक हैं। जिस महल में राम से

मिलाप होता है, उसमें केवल राम के प्रेमी ही अपना शीश उतारकर अर्थात् अहंकार को सम्पूर्ण गँवाकर जा सकते हैं। प्रेमी जिससे प्रेम करता है, उसके बिना उसको रहा नहीं जाता। सच्चा प्रेमी जिससे प्रेम करता है, उसकी ओर एकटक देखता है और चाहता है कि वह भी उसको देखे। वह अपने प्रेमपात्र के पास चल पड़ता है और सम्पूर्ण विघ्न-बाधाओं को और सम्पूर्ण विपत्तियों को झेलते हुए, कठिन-से-कठिन मार्ग को पार कर उससे जा मिलता है। संत कबीर साहब का कितना उत्तम वर्णन निम्नलिखित शब्दों में करते हैं-

**प्रेम सखी तुम करो विचार।**
**बहुरि न आना यहि संसार ॥१॥**
**जो तोहि प्रेम खेलनवा चाव।**
**सीस उतार महल में आव ॥२॥**
**प्रेम खेलनवा यही विशेष।**
**मैं तोहि देखूँ तू मोहि देख ॥३॥**
**प्रेम खेलनवा यही स्वभाव।**
**तू चलि आव कि मोहि बुलाव ॥४॥**
**खेलत प्रेम बहुत पचिहारी।**
**जो खेलिहैं सो जग से न्यारी ॥५॥**
**कहै कबीरा प्रेम समान।**
**प्रेम समान और नहिं आन ॥६॥**

जिस महल में राम से मिल सकते हैं, वह महल अपना ही शरीर है, (पद्य १२)। अपने शरीर के अन्तर की तहों में, अपनी दृष्टि से देखे बिना, राम को देख नहीं सकते। इस

प्रकार देखने के साधन को ही दृष्टिसाधन वा दृष्टियोग कहते हैं। इस साधन का विवरण रा० च० मा० सा० स० की चौपाई सं० ५ को अर्थ और लिखित विचारों के सहित पढ़कर जानिए। वर्णात्मक नाम को अत्यन्त एकाग्रता और प्रेम से जपना; राम को अपने पास बुलाना है। पर याद रहे कि इस प्रकार बुलाकर राम को केवल स्थूल सगुण रूप में ही पा सकते हैं। उनके सूक्ष्म, सूक्ष्मातिसूक्ष्म और निर्गुण रूपों से मिलने के लिए प्रथम कथित रीति से चेतन-वृत्ति को समेटते हुए स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों में राम के स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मातिसूक्ष्म वा कारण रूपों से मिलते हुए तीनों शरीरों से टपकर राम के निर्गुण स्वरूप से मिलना सम्भव है और राम के स्थूल सगुण रूपों से मानस ध्यान के द्वारा मनाकाश में मिल सकते हैं; यह भी अपने शरीर में सिमटना वा अपने अन्तर में राम की ओर जाना ही हुआ। अतएव अपने शरीर में यात्रा करनी राम की ओर चलना है। राम का सच्चा प्रेमी इस यात्रा का यात्री वा अन्तर-पथ का पथिक अवश्य ही होता है। भक्ति-साधना का परम रहस्य यही है। इसी रहस्य को लक्ष्य करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने पद्य (१०) को गाया है। दृष्टियोग की सुगम रीति से सुषुम्न-विन्दु पर युगल दृष्टिधारों को मिलाने से इन्द्रियों की वृत्तियाँ शुभाशुभ कर्मों से सराबोर नहीं रहती हैं, विषयों से हट जाती हैं और तमोगुण-वाहिनी इड़ा और रजोगुण-वाहिनी पिङ्गला से हटकर सतोगुण-वाहिनी सुषुम्ना के विन्दु पर मिल, उसे दृढ़ता से धरती है, तो सतोगुण के प्रकाश से प्रकाशित होती है। जैसे

किसी चीज को एक ही साथ दोनों हाथों से अत्यन्त बलपूर्वक पकड़ने पर सारे शरीर का बल हाथों की पकड़ पर ही आ जाता है, वैसे ही युगल दृष्टि से सुषुम्न-विन्दु को जकड़कर पकड़ने से सब इन्द्रियों की चेतन-वृत्तियाँ वा सुरत की धारें उस विन्दु पर सिमटकर मिल जाती हैं और एक हो जाती हैं। दसो इन्द्रियों के दीपों में सुरत की धारें ही दस बत्तियाँ हैं। इन्द्रियों में रहकर ही ये उनके संग विषयों में बरतकर शुभाशुभ कर्म-रूप घी से सराबोर रहती हैं और रज और तम गुणों में बरतती रहती हैं। सो जब इनका सिमटाव होकर उस विन्दु पर जमाव होता है, जो बाहर में नहीं है और जो किसी इन्द्रिय में इड़ा वा पिंगला में नहीं है, तब सहज ही ये इन्द्रियों से, विषयों से और रज, तम गुणों से हट जाती हैं, सतोगुण से प्रकाशित हो जाती हैं और शुभाशुभ कर्म जलने लगते हैं। जिस चीज का सिमटाव होता है, उसको जिस ओर से सिमटाव होता है, उससे विपरीत ओर को आगे बढ़ाते जाने का सिमटाव का स्वभाव है। इसी कारण पिण्ड वा स्थूल शरीर की ओर से सिमटकर सुरत जब सुषुम्न-विन्दु पर जम जाती है, तो स्थूल शरीर की ओर से विरुद्ध ओर को अर्थात् सूक्ष्म शरीर की ओर को आगे बढ़ जाती है और यह काम यदि उत्तरोत्तर (लगातार) जारी रखा जाय अर्थात् प्रथम विन्दु के सीध में के विन्दुओं पर जहाँ-जहाँ सुरत जाय, वहाँ-वहाँ सिमटाव नहीं छोड़ा जाय तो सुरत वा चेतनवृत्ति की गति सूक्ष्म के सब मण्डलों से गुजरती हुई, सूक्ष्म सगुण के सब रूपों से मिलती हुई, कारण मंडल में पहुँच जाएगी। यहाँ तक दृष्टियोग की गति है, पर यहीं तक

काम समाप्त नहीं होता है, कारण से भी आगे राम के निर्गुण स्वरूप से मिलना है, जहाँ दृष्टि की गति नहीं है। वहाँ केवल निर्गुण रामनाम के भजन से ही जाना सम्भव है। निर्गुण रामनाम की निसबत रा० च० मा० सा० स० की चौपाई सं० ८० को अर्थ और लिखित विचारों के सहित पढ़िए। इस निर्गुण रामनाम का भजन करना सुरत-शब्द-योग का सार है। इस शब्द को सुरत दृष्टि को केवल सुषुम्ना में ही थिर—थाम्हकर वहीं से अथवा दृष्टियोग सम्पूर्ण समाप्त करके भी, अनहद ध्वनि के सहारे आगे बढ़ पा सकती है। पर इन दोनों हालतों में गुरु के संकेत की बड़ी आवश्यकता है। शब्द में सुरत को आकर्षण करने का स्वभाव है। शब्द अपने आकर्षण से सुरत को अपने उद्गम-स्थल में खींच लाता है। निर्गुण रामनाम सुरत को राम के निज निर्गुण स्वरूप तक अपने महान आकर्षण से खींचकर पहुँचा देता है।

विचार का सारांश यह कि वर्णित आरती केवल विचार द्वारा वा राम के केवल स्थूल सगुण रूप की उपासना से ही नहीं की जा सकेगी। यह कथित विचारानुसार वर्णात्मक नाम-भजन, मानस ध्यान, दृष्टि-योग और सुरत-शब्द-योग द्वारा की जा सकेगी। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ज्ञानी भक्त, योगी, सन्त थे, न कि केवल मोटी ही उपासनावाले भक्त।

( २ )

**देहि सत्संग निज अंग श्री रंग,**
**भव भंग कारण सरन सोकहारी।**
**जेतु भदङ्घ्रिपल्लव समास्त्रित सदा,**
**भक्तिरत विगत-संसय मुरारी ॥१॥**

हे लक्ष्मीपति ! मुझे सत्संग दीजिए। वह आपका अपना शरीर, जन्म को नाश करने का कारण और शरणागत के शोक को हरनेवाला है। हे मुरारी ! जो आपके चरणपल्लव के अधीन होकर सदा भक्ति में लगे रहते हैं, वे सन्देह से रहित हो जाते हैं।।१।।

**असुर सुर नाग नर जच्छ गन्धर्व खग,**
**रजनिचर सिद्ध जे चापि अन्ने।**
**सन्त संसर्ग त्रयवर्ग पर परमपद,**
**प्राप्य निःप्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने॥२॥**

तीनों दर्जों के परे (चौथा पद), नहीं पाने योग्य मोक्ष की गति आपकी कृपा से सत्संग पाकर असुर, देवता, नाग, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, पक्षी, निशाचर, सिद्ध और दूसरों के पाने योग्य होती है।।२।।

स्थूल जगत = स्थूल; माया = पिण्ड = अन्धकार; सूक्ष्म जगत = रूप ब्रह्माण्ड = प्रकाश; कारण जगत = कारण माया = अरूप ब्रह्माण्ड और मूल प्रकृति = शब्द। इन तीनों वर्गों वा दर्जों वा पदों के आगे परम मोक्ष है, जिसको चौथा पद कहते हैं।

**वृत्र बलि बान प्रह्लाद मय व्याध गज,**
**गिद्ध द्विज बन्धु निज धर्म त्यागी।**
**साधु-पद-सलिल निर्धूत कल्मष सकल,**
**स्वपच जवनादि कैवल्य भागी॥३॥**

वृत्रासुर, बलि, बाणासुर, प्रह्लाद, मय दानव, व्याध, गज, गिद्ध, स्वधर्म-त्यागी ब्राह्मण (अजामिल), डोम और मुसलमान इत्यादि साधु के चरण के जल से सब पापों को धोकर मोक्ष के भागी हुए॥३॥

**सान्त निरपेच्छ निर्मम निरामय अगुन,**
**सब्द ब्रह्मकै पर ब्रह्मज्ञानी।**
**दच्छ समदृक स्वदृक विगत अति स्व-पर-मति,**
**परम रति विरति तव चक्रपानी॥४॥**

हे चक्र को हाथ में रखनेवाले ! जो आपमें अत्यन्त आसक्त होते हैं, वे शान्त, उदासीन, ममताहीन, रोग-रहित, निर्गुण, शब्दब्रह्म से आगे की गति के ब्रह्मज्ञानी, समदृष्टि में निपुण, अपनपौ की आँख, अपना और पराया विचारनेवाले बुद्धि से अत्यंत रहित और विरक्त होते हैं॥४॥

**विस्व उपकार हित व्यग्र चित्त सर्वदा,**
**त्यक्त मद मन्यु कृत पुण्य रासी।**
**जत्र तिष्ठन्ति तत्रैव अज सर्व हरि,**
**सहित गच्छन्ति छीराब्धि वासी॥५॥**

सर्व = शर्व = शिव।

संसार के उपकार के लिए जिनका चित्त सदा व्यग्र रहता है, जो गर्व और क्रोध को त्यागकर बहुत-से पुण्य करते हैं, वे

जहाँ ठहरते हैं, वहीं ब्रह्मा-शिव के सहित क्षीर-समुद्र में वास करनेवाले हरि भगवान जा पहुँचते हैं।।५।।

**वेद पय-सिन्धु सुविचार मन्दर महा,**
**अखिल मुनिवृन्द निर्मथन कर्त्ता।**
**सार सत्संग-मुद्धृत्य इति निश्चितं,**
**वदत श्री कृष्ण वैदर्भि भर्त्ता।।६।।**

वेद क्षीरसमुद्र है। उत्तम विचार मन्दराचल है। समस्त मुनिगण मथनेवाले हैं। रुक्मिणीजी के स्वामी श्रीकृष्ण कहते हैं कि मन्थन करके सत्संगरूपी सार निकाला गया है, यह निश्चित है।।६।।

**सोक सन्देह भय हर्ष तम तर्ष गन,**
**साधु सद्युक्ति विच्छेदकारी।**
**यथा रघुनाथ सायक निसाचर चमू,**
**निचय निर्दलन पटु वेग भारी।।७।।**

शोक, संशय, डर, हर्ष, अन्धकार और अभिलाषाओं को साधु अपनी सुन्दर युक्ति से इस तरह हटा देनेवाले हैं, जिस तरह श्रीरघुनाथजी (राम) का तीर निशाचर की सेनाओं का नाश करने के लिए तीक्ष्ण और भारी वेगवान है।।७।।

साधु-सद्युक्ति = साधु की सुन्दर युक्ति = सुरत को सुषुम्ना में रखना।

**जत्र कुत्रापि मम जन्म निज कर्म बस,**
**भ्रमत जग जोनी संकट अनेकम्।**
**तत्र त्वद्भक्ति सज्जन समागम सदा,**
**भवतु मे राम विश्राममेकम्।।८।।**

अपने कर्मों के अधीन हो संसार की योनियों में भटकते हुए अनेक कष्टों में जहाँ कहीं मेरा जन्म हो, वहाँ आपकी भक्ति और सत्संग मुझको प्राप्त हो; हे राम ! मैं यही एक विश्राम माँगता हूँ।।८।।

**प्रबल भव जनित त्रय व्याधि भेषज भक्ति,**
**भक्त भैषज्यमद्वैत दरसी।**
**सन्त भगवन्त अन्तर निरंतर नहीं किमपि,**
**मति विमल कह दास तुलसी।।९।।**

संसार से उत्पन्न हुए तीनों कठिन रोगों की औषधि भक्ति है। आत्मदर्शी भक्त वैद्य हैं। सन्त और भगवन्त में सदा कुछ भी भेद नहीं है। हे तुलसीदास ! यह निर्मल बुद्धिवाले कहते हैं।।९।।

त्रयव्याधि = तीन रोग = (आध्यात्मिक = ज्वरादि = शारीरिक क्लेश। आधिदैविक = मन आदि इन्द्रियों के क्लेश = प्रारब्ध से उत्पन्न क्लेश। आधिभौतिक = सर्पादि दुष्ट जन्तुओं से उत्पन्न हुए क्लेश = प्राणी-सम्बंधी क्लेश = तत्त्वों से उत्पन्न क्लेश)।

**विचार**—त्रयवर्ग पर, शब्दब्रह्मैक पर और तीनों अवस्थाओं के स्थान आदि बहुत-सी बातें, जो पद्यों से संबंध रखनेवाली हैं, वे सब दिए हुए चित्र से विदित होंगे।

( ३ )

**जागु जागु जागु जीव जो है जग जामिनी।**
**देह गेह नेह जानि जैसे घन दामिनी।।**

**सोये सपने को सहइ संसृति सन्ताप रे।**
**बूड़ो मृग बारि खायो जेंवरी को साँप रे॥१॥**

संसार-रूपी रात में (सोया हुआ) जीव! जग, जग, जग; चेत, चेत, चेत! देह और घर के स्नेह को ऐसा जान, जैसे बादल में बिजली। तू सोते हुए स्वप्न में जन्म-मरण का दु:ख सहता है और मृग-तृष्णा के जल (भ्रम-जल) में डूबता है और रस्सी का साँप (भ्रम का साँप) तुझे खाए जाता है॥१॥

**कहैं वेद बुध तू तो बूझ मन माहिँ रे।**
**दोष दुख सपने को जागे ही पै जाहिँ रे॥**
**'तुलसी' जागे तें जाइ तिहूँ ताप ताय रे।**
**राम नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे॥२॥**

वेद और बुद्धिमान कहते हैं कि सपने के दोष-दु:ख जागने पर ही दूर होते हैं, इसे तू भी तो मन में बूझ। तुलसीदासजी कहते हैं कि जगने पर तीनों तापों की जलन दूर होती है। रामनाम में सहज ही पवित्र रुचि और सुन्दर प्रेम कर॥२॥

**भावार्थ**—सांसारिक विषयों में मग्न मत रह। देह और घर बहुत शीघ्र छूटनेवाले हैं। सांसारिक विषयों में मग्न रहना, जन्म-मरण के दु:खों का कारण है। ये जन्म-मरण के दु:ख स्वप्नवत् असत्य हैं। संसार और सांसारिक विषयों में सुख नहीं है। इनमें सुख मानना भ्रम है। इसी भ्रम में जीव गोता खा रहा है और दु:ख भोग रहा है। स्वप्न के दोष और दु:ख जगने पर ही दूर होते हैं। सुरुचि और सुन्दर प्रेम से रामनाम का भजन करने से तीनों तापों की जलन दूर हो जाएगी।

**विचार**–इस पद्य के भावों से प्रगट होता है कि प्रेम-सहित रामनाम को भजने से जीव चेतेगा और उसके सब दुःख दूर होंगे। रामनाम के विषय में रा० च० मा० सा० स० की चौपाई सं० ७९ के अर्थ और अर्थ के नीचे लिखित विचारों को पढ़िए। परम पुरुष सर्वेश्वर को लोग बहुत-से वर्णात्मक नामों से पुकारते हैं। उनमें से किसी एक को गुरु से पाई हुई युक्ति द्वारा जपने का एक ही फल यह होता है कि पिण्ड में सुरत वा चैतन्य वृत्ति का इतना सिमटाव होता है, जितना सिमटाव होने से मानस ध्यानाभ्यास की योग्यता भक्त में हो जाती है। सद्गुरु से जो मन्त्र (नाम) प्राप्त हो, उसी को श्रद्धा से जपना चाहिए। केवल वर्णात्मक नाम जपने से ही नाम-भजन समाप्त नहीं होगा। वर्णात्मक नाम-भजन के बाद मानस ध्यान से और इसके बाद दृष्टियोग से योग्यता प्राप्त करके ध्वन्यात्मक नाम-भजन करने पर नाम-भजन पूर्ण होगा। इस प्रकार नाम-भजन किए बिना, पद में कथित लाभ नहीं होता। स्थूल माया-जनित, सूक्ष्म माया-जनित और कारण माया-जनित; तीनों तापों की जलन तभी दूर होनी संभव है, जब भजन करते हुए जीव कथित तीनों परदों वा वर्गों वा दर्जों से बाहर हो जाए। ऊपर कहे अनुसार वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक नाम के दोनों रूपों का पूरा-पूरा भजन करने पर भक्त कथित तीनों परदों को अवश्य ही पार कर जाता है। क्योंकि इस प्रकार भजन करने से सुरत स्थूल से सूक्ष्म में, सूक्ष्म से कारण में उत्तरोत्तर सिमटते-सिमटते, परदों को भेदते-भेदते त्रयवर्ग-पर या चतुर्थवर्ग में पहुँच जाती है और परम प्रभु से जा मिलती

है। जीव का पूरा जगना यही है।

**दोहा–'माया मुख जागे सभे, सो सूता कर जान।**
**दरिया जागे ब्रह्म दिसि, सो जागा परमान॥'**

**(४)**

**ऐसी मूढ़ता या मन की॥**
**परिहरि राम भगति सुर-सरिता,**
**आस करत ओस कन की॥१॥**

इस मन की ऐसी मूर्खता है कि (प्यास बुझाने के लिए) राम की भक्तिरूपी गंगा की धारा को छोड़कर ओस के कणों की आशा करता है॥१॥

**धूम समूह निरखि चातक ज्यों,**
**तृषित जानि मति घन की।**
**नहिँ तहँ सीतलता न पानि पुनि,**
**हानि होत लोचन की॥२॥**

जैसे प्यासा पपीहा बहुत-से धुएँ को बादल समझकर (स्वाति-जल की आशा से) उसे देखता है। वहाँ ठण्ढाई नहीं है, फिर पानी भी नहीं है; (इस भाँति देखने से केवल) आँख की हानि होती है॥२॥

**ज्यों गच काँच बिलोकि स्येन जड़,**
**छाँह आपने तन की।**
**टूटत अति आतुर आहार बस,**
**छत बिसारि आनन की॥३॥**

जैसे अज्ञानी बाज शीशे के चबूतरे में अपनी देह की

परछाईं देखकर भोजन करने की इच्छा के अधीन अत्यन्त अधीर होकर अपने मुँह के घाव को भूलकर (शीशे पर) झपटता है।।३।।

**कहँ लौँ कहौँ कुचाल कृपानिधि, जानत हौं गति जन की।**
**तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निजपन की।।४।।**

हे दयासागर ! मन की कुचालों को कहाँ तक कहूँ ? आप भक्त के मन की गति तो जानते ही हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि हे स्वामी ! मेरे कठिन दुःख को हरिए और अपनी (शरणागत-पालन की) प्रतिष्ठा की लाज रखिए।।४।।

**भावार्थ**—मन सुख पाने के लिए सदा लालायित रहता है, यही इसकी प्यास है। यह प्यास गंगाधारा-रूप ईश्वर-भक्ति से बुझ सकती है। मन ईश्वर-भक्ति में नहीं लगकर ओसकण-रूप विषय को प्राप्त करने की चेष्टा इस आशा से करता रहता है कि इससे ही सुख प्राप्त होगा; किन्तु ऐसा कदापि नहीं होता। यथार्थ में ईश्वर-भक्ति-रूप बादल से सुख की वर्षा होती है। मन-रूप चातक इस बात को भूला रहता है और विषय-रूप बहुत-सा धुआँ देखकर, उसी को सुख बरसानेवाला बादल जानकर, उसे सुख पाने की आशा से देखता रहता है। विषय में शांति और सुख नहीं है। इसकी तरफ लगने से आत्मबल क्षय होता है। विषय काँच का चबूतरा है। इसमें अपनी ही चेतनवृत्ति सुख-रूप भासती है। पर मन यह समझकर कि विषय का सुख अपनी चेतनवृत्ति का सुख नहीं है, विषय का ही सुख है, आत्मबल की क्षति भूलकर, उस पर आतुर होकर टूट पड़ता है। यह सब बात मन की मूर्खता

है। ईश्वर का शरणागत बनने से मन की यह मूर्खता छूटती है और जीव ईश्वर-भक्ति द्वारा सब दुःखों से छूटता है।

( ५ )

**माधव मोह फाँस क्यों टूटै ।**
**बाहर कोटि उपाय करिय,**
**अभिअन्तर ग्रन्थि न छूटै ॥१॥**

हे माधव ! मोह का फन्दा कैसे टूटे ? बाहर में करोड़ों यत्न करता हूँ, अन्तर की गिरह नहीं छूटती है।।१।।

**घृत पूरन कराह अन्तर्गत, ससि प्रतिबिम्ब दिखावै ।**
**ईंधन अनल लगाइ कलप सत, अवटत नास न पावै ॥२॥**

जैसे घी से भरे हुए कड़ाह के भीतर चन्द्रमा की परछाईं मालूम होती है, पर सौ कल्प तक भी (उस कड़ाह को चूल्हे पर चढ़ाकर) जलावन से आँच लगाकर औंटने से (वह परछाईं) नाश नहीं होती है।।२।।

**तरु कोटर महँ बस विहंग, तरु काटे मरइ न जैसे ।**
**साधन करिय विचारहीन, मन सुद्ध होइ नहिं तैसे ॥३॥**

जैसे गाछ के खोढ़र में चिड़िया बसती हो और उस गाछ को काटा जाए तो चिड़िया नहीं मरती है, वैसे ही बिना सारासार ज्ञान के साधन करने से मन पवित्र नहीं होता।।३।।

**अन्तर मलिन विषय मन अति, तनु पावन करिय पखारे ।**
**मरइ न उरग अनेक जतन, बलमीक विविध विधि मारे ॥४॥**

यदि विषयासक्त मन अन्तर में मैला हो और शरीर को नहला-धुलाकर अत्यन्त पवित्र किया जाए (तो इससे कुछ

लाभ नहीं; क्योंकि) बहुत उपाय से बिल को अनेक भाँति पीटने से उसके भीतर का साँप नहीं मरता है।।४।।

**तुलसिदास हरि गुरु करुना बिनु, विमल विवेक न होई ।**
**बिनु विवेक संसार घोर-निधि, पार न पावइ कोई ।।५।।**

तुलसीदासजी कहते हैं कि हरि और गुरु की कृपा बिना पवित्र विवेक नहीं होता है। घोर संसार-सागर से बिना विवेक के कोई पार नहीं पाता है।।५।।

**भावार्थ**—गुरु और ईश्वर की कृपा प्राप्त करके तथा पवित्र विवेक पाकर अन्तर में साधन करने से मोह-फाँस टूटेगा और संसार-सागर से मुक्ति प्राप्त होगी।

**विचार**—गुरु की सेवा करने से, उनकी आज्ञा में बरतने से गुरु और हरि; दोनों की कृपा होती है। पद्य १ में वर्णित आरती अन्तर का साधन है, जिसका (६) भेद गुरु-कृपा से प्राप्त होता है।

**माधव असि तुम्हारि यह माया।**
**करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं,**
**जब लगि करहु न दाया।।१।।**

हे माधव ! आपकी यह माया ऐसी है कि जबतक आप दया नहीं करते, तबतक उपाय करते-करते सड़कर मर जाएँ, परन्तु इससे कोई पार नहीं होता।।१।।

**सुनिय गुनिय समुझिय, समझाइय दशा हृदय नहिं आवै।**
**जेहि अनुभव बिनु मोह जनित, भव दारुण विपति सतावै।।२।।**

सुनता हूँ, विचारता हूँ, समझता हूँ और दूसरों को समझाता हूँ; पर वह अवस्था प्राप्त नहीं होती है, जिसके

प्रत्यक्ष ज्ञान के बिना मोह से उत्पन्न संसार का भयानक दुःख सताता है।।२।।

**ब्रह्म पियूष मधुर शीतल, जो पै मन सो रस पावै।**
**तौं कत मृगजल रूप विषय, कारण निसिबासर धावै।।३।।**

ब्रह्म-पियूष = ब्रह्म का अमृत = सर्वव्यापी ईश्वर-संबंधी अमृत = ब्रह्मज्योति और ब्रह्मशब्द-रूप चेतन-धारें।

सर्वव्यापी ईश्वर-संबंधी अमृत (ब्रह्मज्योति और ब्रह्मशब्द रूप चेतनधारें) मधुर और शीतल है; यदि मन उनका रस पा जाय, तो भ्रम-रूप विषय के लिए वह रात-दिन क्यों दौड़े? ।।३।।

**जेहि के भवन विमल चिन्तामनि, सो कत काँच बटोरै।**
**सपने परबस परइ जागि, देखत केहि जाइ निहोरै।।४।।**

जिसके घर में निर्मल चिन्तामणि हो, सो क्यों काँच जमा करता है ? सपने में परवश पड़ा हुआ (मनुष्य) जब जागकर देखे, तब किसकी विनती करे।।४।।

**ज्ञान भगति साधन अनेक सब, सत्य झूठ कछु नाहीँ।**
**तुलसिदास हरिकृपा मिटइ भ्रम, यह भरोस मन माहीं।।५।।**

ज्ञान और भक्ति आदि अनेक साधन सब सत्य ही हैं; कुछ झूठ नहीं है। तुलसीदासजी कहते हैं कि मेरे मन में यह भरोसा है कि हरि-कृपा से ही भ्रम का नाश होता है।।५।।

**भावार्थ**—जबतक ईश्वर की कृपा नहीं होती, तबतक माया से तर नहीं सकते। ज्ञान को केवल सुनकर, विचारकर, समझकर और दूसरों को समझाकर वह अवस्था नहीं मिलेगी, जिसकी यथार्थ प्राप्ति के बिना मोह-जनित विपत्ति सताती रहती है। ब्रह्म-पीयूष मधुर और शीतल है। इसका स्वाद पाकर

बाहरी विषयों में भटककर दु:ख उठाना नहीं पड़ता। मनुष्य के अन्तर में सब इच्छाओं को पूर्ण करनेवाले परम प्रभु सदा विराजमान रहते हैं, इसलिए मनुष्य को बाहरी विषयों के संग्रह की आसक्ति में नहीं फँसना चाहिए। मोह से जीव अपने को माया के वश में जानता है। मोह दूर होने पर किसी की खुशामद नहीं करनी पड़ेगी। मोह दूर करने के लिए ज्ञान और भक्ति का साधन सत्य ही है। ईश्वर की प्रसन्नता के निमित्त ज्ञान और भक्ति का साधन निरहंकारी भाव से करना चाहिए और मन में यह भरोसा रखना चाहिए कि ईश्वर की कृपा से भ्रम दूर होगा।

**विचार**—पद्य के भाव से गो० तुलसीदासजी महाराज का यह विचार स्पष्ट झलकता है कि सर्वव्यापी ईश्वर सब इच्छाओं के पूर्ण करनेवाले घट-घट में विराजमान हैं; उनकी प्राप्ति का स्वाद पाए बिना, जीव विषयानुरागी होने के दु:खों से और मोह से नहीं छूट सकता है। इसलिए अन्तर्मुख उपासना की अनिवार्य आवश्यकता है। इसका साधन पद्य-संख्या १ में वर्णन किया गया है। अन्तर्मुख उपासना के द्वारा आज्ञाचक्र के केन्द्र-विन्दु पर सिमट आने से जीव को ब्रह्म-पीयूष प्राप्त होने लगता है।

( ७ )

**अस कछु समुझि परत रघुराया ।**
**बिनु तव कृपा दयाल दास हित,**
**मोह न छूटइ माया ॥१॥**

हे दास के हित करनेवाले दयालु रघुराज (रामजी) !

कुछ ऐसा समझ पड़ता है कि बिना आपकी कृपा के मोह-माया नहीं छूटती।।१।।

**वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुन, भव पार न पावइ कोई।**
**निसि गृह मध्य दीप की बातन्हि, तम निवृत्त नहिं होई॥२॥**

वचन से ज्ञान का निरूपण करने में अत्यन्त निपुण होकर कोई संसार का पार नहीं पाता। जैसे रात के समय घर में दीपक की केवल बात करने से अन्धकार दूर नहीं होता।।२।।

**जैसे कोउ एक दीन दुखित अति, असन बिना दुख पावै।**
**चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह, लिखे न विपति नसावै॥३॥**

जैसे कोई एक अत्यन्त दीन-दु:खी मनुष्य भोजन बिना दु:ख पाता हो। यदि वह अपने घर में कामधेनु और कल्पवृक्ष के चित्र लिख दे, तो उसकी विपत्ति नष्ट नहीं होती।।३।।

**षट रस बहु प्रकार व्यंजन कोउ, दिन अरु रैन बखानै।**
**बिनु बोले सन्तोष जनित सुख, खाइ सोई पै जानै॥४॥**

छहो रसों से युक्त बहुत तरह के भोजनों का कोई दिन-रात बखान करता रहे (पर खाए नहीं, तो खाने से संतोष का जो सुख होता है, सो उसको प्राप्त नहीं होगा) और दूसरा जो भोजनों को बखाने बिना ही भोजन करता है, वह भोजन करके उस संतोष का सुख पाता है।।४।।

**जब लगि नहिं निज हृदि प्रकास,**
**अरु विषय आस मन माहीं।**
**तुलसिदास तब लगि जग जोनि,**
**भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं॥५॥**

जबतक मनुष्य अपने हृदय में प्रकाश नहीं पावे और

विषय की आशा मन में रखे, तुलसीदासजी कहते हैं कि तबतक वह संसार की योनि में भ्रमता है और उसे सपने में भी सुख नहीं होता।।५।।

**भावार्थ**–वाचक ज्ञानी (अर्थात् हृदय में ज्ञान की दशा से हीन केवल वचन ज्ञान-निरूपण करनेवाले) को मोक्ष नहीं प्राप्त होता है। जो अपने मन से विषय की आशा को हटा देता है, वह अपने अन्तर में ब्रह्म-ज्योति को पाता है और चित्र का कल्पवृक्ष नहीं, बल्कि असली कल्पवृक्ष–ईश्वर को पाता है, ईश्वर की कृपा से वही मोक्ष पाता है।

**विचार**–पद्य में प्रकाश पाने की आवश्यकता बतलाई गई है। पद्य-संख्या १ में वर्णित राम की आरती के करने से अन्तर में प्रत्यक्ष ब्रह्म-प्रकाश दरसता है। यह जाग्रत, स्वप्न और ख्याल की दृष्टि से नहीं दरसता। सुषुप्ति-सहित कही हुई तीनों अवस्थाओं को टपता हुआ जो परम विरही भक्त प्रेमावेश से मस्त होकर प्रभु से मिलने के लिए अपने अन्तर में चल पड़ता है, उसकी तुरीय अवस्थावाली दिव्य दृष्टि अन्तर में खुल जाती है। वह उसी दृष्टि से कथित प्रकाश को देखता है। भक्ति के इस रहस्य को जो नहीं जानते हैं, वे केवल बुद्धि, अक्ल और समझ को ही अन्तर का प्रकाश मानते हैं। इस पद्य में ऐसे प्रकाश वा वाक्य-ज्ञान की प्रशंसा नहीं की गई है। इस प्रकार के सच्चे भक्त को परम प्रभु-रूप कल्पवृक्ष और कामधेनु के माया संबंधी चित्रवत् सब सगुण रूपों के प्रत्यक्ष दर्शन मार्ग में प्राप्त होते हुए अन्त में उनका इन्द्रियातीत आत्मानुभव-गम्य यथार्थ स्वरूप भी प्राप्त हो

जाता है और उस भक्त की सम्पूर्ण विपत्ति मिट जाती है।

(८)

**मन मेरे मानहि सिख मेरी।**
**जौँ निज भगति चहइ हरि केरी॥१॥**

हे मेरे मन ! यदि तू हरि-भक्ति चाहता है, तो मेरा सिखावन मान॥१॥

**उर आनहि प्रभु कृत हित जेते।**
**सेवहिँ ते जे अपनपौ चेते॥**
**दुख सुख अरु अपमान बड़ाई।**
**सब सम लेखहि विपति बिहाई॥२॥**

प्रभु की, की हुई भलाइयों को स्मरण कर। जिन्होंने आत्मज्ञान प्राप्त किया है, उनकी सेवा कर। दुःख, सुख, निरादर और बड़ाई; सबको बराबर जान, तो तेरी विपत्ति दूर हो जाएगी॥२॥

**सुनु सठ काल-ग्रसित यह देही।**
**जनि तेहि लागि बिदूषहि केही॥**
**तुलसिदास बिनु असि मति आये।**
**मिलहिं न राम कपट लय लाये॥३॥**

हे शठ मन ! सुन, यह शरीर काल-ग्रसित है। इसके वास्ते किसी को मत सता। तुलसीदासजी कहते हैं कि हृदय में बिना ऐसी बुद्धि उपजे, कपट से लौ लगाकर राम नहीं मिलते हैं॥३॥

( ९ )

**॥ चौपाई ॥**

**रघुपति भगति सुलभ सुखकारी।**
**सो त्रयताप सोक भयहारी॥**
**बिनु सत्संग भगति नहिं होई।**
**ते तब मिलहिं द्रवहिँ जब सोई॥१॥**

**॥ छन्द ॥**

**जब द्रवहिँ दीनदयाल राघव, साधु संगति पाइये।**
**जेहि दरस परस समागमादिक, पाप रासि नसाइये॥**
**जिन्ह के मिले दुख सुख समान, अमानतादिक गुण भये।**
**मद मोह लोभ विषाद, क्रोध सुबोध तेँ सहजहिँ गये॥२॥**

सुबोध = शुद्धज्ञान; यह ज्ञान बाहरी और अन्तरी दोनों सत्संगों के द्वारा प्राप्त होता है। रा० च० मा० सा० स० में नवधा भक्ति को पढ़कर सत्संगों को समझ लीजिए। (अर्थ सुगम है)

**॥ चौपाई ॥**

**सेवत साधु द्वैत भय भागै ।**
**श्री रघुवीर चरन लय लागै ॥**
**देह जनित विकार सब त्यागै ।**
**तब फिरि निज सरूप अनुरागै ॥३॥**

द्वैत = दो भेद = ईश्वर और जीव में भेद का ज्ञान। साधु की सेवा करने से श्रीरामजी के चरण में लौ लगती है और द्वैत-ज्ञान या मोह से उत्पन्न डर मिट जाता है। भक्त देह से

उत्पन्न होनेवाले सब विकारों को त्याग देता है, तब फिर अपने (आत्म-) स्वरूप का प्रेमी बन जाता है।।३।।

**॥ छन्द ॥**

**अनुराग सो निजरूप जो, जग तें विलच्छन देखिये ।**
**सन्तोष सम सीतल सदा दम, देहवन्त न लेखिये ॥**
**निर्मल निरामय एकरस, तेहि हरष सोक न व्यापई ।**
**त्रयलोक पावन सो सदा, जाकी दसा ऐसी भई ॥४॥**

भक्त उस आत्मस्वरूप से प्रेम करता है, जो संसार से अद्भुत देखने में आता है। आत्मस्वरूप संतोष-रूप, समता-रूप, सदा शीतल-रूप और इन्द्रियनिग्रह-रूप है, उसे देहवाला नहीं गिनना चाहिए। वह शुद्ध, निरोग और एकरस है और उस (आत्मरूप) को हर्ष और शोक नहीं व्यापता है। जिस भक्त की ऐसी गति हुई वह तीनों लोकों में सदा पवित्र है।।४।।

**॥ चौपाई॥**

**जौं तेहि पन्थ चलइ मन लाई ।**
**तौ हरि काहे न होहिं सहाई ॥**
**जो मारग स्त्रुति साधु दिखावैं ।**
**तेहि मग चलत सबइ सुख पावैं ॥५॥**

यदि उस रास्ते पर (ईश्वरोपासना-द्वारा आत्मस्वरूप प्राप्त करने की दशा का मार्ग, जिसका पहले वर्णन हो चुका है) मन लगाकर चले तो हरि क्यों नहीं सहायक होंगे ? वेद का जो रास्ता साधु दरसाते हैं, उस रास्ते पर चलने में सब कोई सुख पाते हैं।।५।।

॥ छन्द ॥

**पावइ सदा सुख हरि कृपा संसार आसा तजि रहै।**
**सपनेहुँ नहीं दुख द्वैत दरसन बात कोटिक को कहै॥**
**द्विज देव गुरु हरि संत बिनु संसार पार न पाइये।**
**यह जानि तुलसीदास त्रास हरण रमापति गाइये॥६॥**

वह (आत्म-स्वरूप में रत भक्त) संसार की आशा को त्यागकर (जीवन्मुक्त होकर) संसार में रहता है और हरि की कृपा से सदा सुख पाता है। (उसकी निसबत) अनेक बातें कौन कहे ? उसे सपने में भी वह दुःख नहीं होता है, जो ईश्वर से अपने को दूसरा मानकर उत्पन्न होता है। ब्राह्मण, देवता, गुरु, ईश्वर और संत की कृपा बिना संसार का पार पाया नहीं जाता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसा जानकर डर को हरनेवाले लक्ष्मीपति का गुण गाइए॥६॥

**भावार्थ**—हरि की कृपा से साधु-संग मिलता है। सत्संग से ईश्वर की भक्ति मिलती है। ईश्वर की भक्ति मोक्षदायक है। साधु की सेवा करने से प्रथम सगुण ब्रह्म की प्रीति-सहित उपासना बनती है। इससे देह से उत्पन्न विकार दूर होता है, तब फिर आत्मस्वरूप में प्रेम होता है। आत्मस्वरूप अद्‌भुत, अदेह और परम पवित्र है। इस दशा को पाकर सपने में भी द्वैत-दुःख नहीं व्यापता है। मन लगाकर इस दशा को प्राप्त करने के मार्ग पर चलने से ईश्वर सहायक होते हैं।

**विचार**—गो० तुलसीदासजी महाराज के इस पद्य के भावों से ये सिद्धान्त स्पष्ट सिद्ध होते हैं—(१) ब्रह्म के दो स्वरूप हैं—निर्गुण और सगुण। (२) सत्संग करके दोनों स्वरूपों

की प्राप्ति का भेद जानना चाहिए। (३) केवल सगुण रूप से ही प्रेम करके उसी में सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए। (४) प्रथम से ही जान लेना चाहिए कि निर्गुण ब्रह्म वा आत्मस्वरूप को प्राप्त करके ही भक्ति पूरी होगी और तभी ईश्वर और अपने में भेद-ज्ञान का दुःख (द्वैत-दुःख) मिटकर परम कल्याण होगा। इसलिए प्रथम सगुण ब्रह्म की उपासना से अपने को योग्य बना, फिर निर्गुण-स्वरूप का अनुरागी बन, उसे प्राप्त करना चाहिए। (पद्य १ में वर्णित आरती के अर्थ और विचार आदि में इस प्रकार की पूरी उपासना का वर्णन किया गया है)। (५) जो कोई इस पूरी उपासना के मार्ग पर (अर्थात् सगुण से निर्गुण तक पहुँचने के मार्ग पर) मन लगाकर चलेगा, उसपर ईश्वर प्रसन्न होंगे और सहायता देकर उसे निर्गुण वा आत्मस्वरूप तक की गति प्राप्त करा देंगे। (६) कथित मार्ग पर चित्त लगाकर चलना, ईश्वर को प्रसन्न करके उनको सहायक बनाने का एक ही जरिया है। (गोस्वामीजी की यह बात–"God helps those who help themselves." 'ईश्वर उनको सहायता देता है, जो अपने को अपने से मदद करते हैं।।' के सदृश ही है।) (७) इस तरह गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज केवल सगुण-उपासना तक ही नहीं रह जाते, वे आत्मस्वरूप वा निर्गुण के भी प्रेमी बनते हैं और उसे पाकर द्वैत-दुःख से मुक्त होते हैं। 'जानत तुम्हहिँ तुम्हइ होइ जाई' वाला पद प्राप्त कर लेते हैं; 'गोस्वामीजी सगुण रूप में ही रत थे, वे भेद-भक्ति (ईश्वर से अलग रहने की भाववाली भक्ति) को ही पसन्द करते थे और उनकी गति इसी भक्ति

तक थी,' ऐसा कहना अनजानपन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।।

**( १० )**

**रघुपति भगति करत कठिनाई ।**
**कहत सुगम करनी अपार,**
**जानइ सो जेहि बनि आई ।।१।।**

राम की भक्ति करने में कठिन है। वह केवल कहने भर ही सरल है; पर उसके अनेक साधन करने पड़ते हैं, इस बात को वही जानता है, जिससे यह बन पड़ी है (अर्थात् जिसने इसको पूरा-पूरा किया है)।।१।।

**जो जेहि कला कुसल ता कहँ, सो सुलभ सदा सुखकारी ।**
**सफरी सनमुख नल प्रवाह, सुरसरी बहइ गज भारी ।।२।।**

जो जिस विद्या में प्रवीण है, उसके लिए वह सदा सुलभ और सुखदायिनी होती है। छोटी मछली (सफरी) नल के (अत्यन्त तेज) प्रभाव में भी सम्मुख ही (भाठे से सिरे की ओर को) जाती है और हाथी (जिसमें नल की तरह अत्यन्त तीव्र प्रवाह नहीं होता, उस बहुत चौड़ी) गंगा की धारा में भी (सम्मुख नहीं जा सकता) भँस जाता है (क्योंकि हाथी को तैरने का अभ्यास मछली की तरह नहीं है। वह इस विद्या में निपुण नहीं है)।।२।।

**ज्यों सर्करा मिलइ सिकता महँ, बल तें नहिं बिलगावै ।**
**अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै ।।३।।**

जैसे चीनी बालू में मिल गई हो, तो परिश्रम करने पर भी वे भिन्न-भिन्न नहीं होती। पर स्वाद जाननेवाली छोटी

चींटी बिना परिश्रम के (बालू से चीनी को अलग कर) पा लेती है।।३।।

**सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी ।**
**सोइ हरिपद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी ।।४।।**

सकल दृस्य = संसार।

संसार को अपने पेट में घुसाकर नींद को छोड़ जो योगी सोता है, वही हरि-पद के परम सुख का प्रत्यक्ष ज्ञान पाता है और वह द्वैत (ईश्वर और जीव की भिन्नता के भाव) का अत्यन्त त्यागी होता है।।४।।

**सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं ।**
**तुलसिदास एहि दसा हीन, संसय निर्मूल न जाहीं ।।५।।**

वहाँ (द्वैत से अत्यन्त हीन हरिपद में) दु:ख, अज्ञान, डर, सुख, दिन, रात, स्थान और समय नहीं है। तुलसीदासजी कहते हैं कि इस गति वा पहुँच के बिना संदेह सम्पूर्ण रूप से नहीं मिटता है।।५।।

**भावार्थ**—पूरे भक्त, जिनसे भक्ति के सब साधन पूरे-पूरे बन पड़े हैं—जानते हैं कि यथार्थ में राम की भक्ति करने में कठिन है, पर उसकी ओर मनुष्यों के चित्त को अत्यन्त आकर्षित करने के लिए ही यह रोचक वचन कहा जाता है कि राम-भक्ति सुलभ है। भक्ति को कठिन जानकर, उसके साधनों को करने से घबड़ाना, हिम्मत हार बैठना ठीक नहीं है। किसी भी विद्या में अभ्यास करते-करते ही कोई उसमें प्रवीण होता है। जब जो जिस विद्या में प्रवीण हो जाता है, तब वह उस विद्या को सुलभ और सुखदायिनी मालूम करता है।

भक्त को चाहिए कि योगी बनकर जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति; तीनों अवस्थाओं से आगे बढ़े, बाहरी जगत से बेसुध हो जाय अर्थात् नींद छोड़कर सो जाय और सारे संसार को अपने अन्दर में ही देखे। भक्त अपनी गति को और भी आगे बढ़ाकर, हर्ष-शोकादि द्वन्द्व-रहित, देश और काल-रहित और ईश्वर और जीव के द्वैत-भेद-रहित पद प्राप्त करे वा अतिशय द्वैत-वियोगी बने। इस पद से विहीन का संशय निर्मूल होकर नष्ट नहीं होता है।

**विचार**–इस पद्य में गोस्वामीजी महाराज ने भक्ति के उन सूक्ष्म साधनों की ओर विशेष रूप से संकेत किया है, जो योगाभ्यास से होते हैं। सफरी (छोटी मछली), नल, नल-प्रवाह नल-प्रवाह के सम्मुख सफरी का जाना, सुरसरि, हाथी का सुरसरि में बहना, बालू-चीनी का मिश्रण और इस मिश्रण से चीनी को चींटी चुन लेती है, आदि कहकर अभ्यास के केवल विशेष गुण को प्रत्यक्ष रूप से ही नहीं, बल्कि योगाभ्यास करने की विधि भी संकेत से वर्णन की गई है। गोस्वामीजी महाराज यह बात अच्छी तरह मानते हैं कि राम के विशेष प्यारे भक्त योगी होते हैं। (रा० च० मा० सा० स० की चौ० सं० ४११ तथा ९२ से ९८ तक पढ़िए) पद्य १ में राम की आरती भी योगाभ्यास से ही हो सकती है और पद्य ११ में कहा गया–चतुष्ट्य अन्तःकरण और तीनों अवस्थाओं को छोड़कर भगवन्त को भजना भी योगाभ्यास बिना कदापि नहीं हो सकता है। फिर देव-ऋषि नारद और शिवजी आदि भी पद्य १ में वर्णित आरती राम की करते हैं और स्वयं गोस्वामीजी

भी अपने मन से कहते हैं कि रे मन ! तू भी ऐसी आरती राम की कर। उक्त पद्य में कहकर यह सूचित किया गया है कि परम प्राचीन काल से ही योगाभ्यास द्वारा भक्ति की जाती है और इस कलिकाल में भी ऐसी ही (भक्ति) करनी परमावश्यक है। सारांश, बिना योगाभ्यास के किए भक्ति पूर्ण रूप से किसी युग में कदापि न बनेगी। इस पद्य (१०) में भक्ति का वर्णन करते हुए उसमें योग सम्मिलित कर दिया गया है, इसका कारण ऊपर कथित बात ही जान पड़ती है। जबकि गोस्वामीजी महाराज के वचनों से यह बात सिद्ध हो जाती है कि भक्ति करने में योगाभ्यास करने की पूरी आवश्यकता है, तब यदि उनके एक ही पद्य में भक्ति और योगाभ्यास का वर्णन पाकर, उसी पद्य में योगाभ्यास करने की युक्ति का भी संकेत समझ में आवे, तो इसको अनुचित और क्रम वा सिल-सिले के बाहर की समझ नहीं मानी जा सकती है। सफरी, नल, नल का प्रवाह, हाथी, गंगा, चीनी, बालू और चींटी आदि की बातों को कहकर पद्य में योगाभ्यास करने की युक्ति के संकेत का इस प्रकार व्योरा है—(सफरी, एक छोटी मछली होती है, जिसको पूँटी वा पोठी वा सहरी कहते हैं। ह्वेल, बोआर और रेहू आदि बड़ी-बड़ी मछलियों को सफरी नहीं कहते।) सिमटी हुई चेतन-वृत्ति वा सुरत सफरी है, सुषुम्ना नाड़ी नल है, जिससे चेतन-वृत्ति का प्रवाह ब्रह्माण्ड से पिण्ड की ओर निरंतर बहता रहता है। यह प्रवाह ब्रह्माण्ड के निचले भाग के रूप-मण्डल में ब्रह्म-ज्योति का रूप है और ब्रह्माण्ड के ऊपरी भाग के अरूप-मण्डल में ब्रह्मशब्द

(अनहद ध्वनि) का रूप है। ज्योति और शब्द; दोनों का स्वभाव सुरत को अपने उद्गम-स्थान की ओर आकर्षित कर लेने का है। गुरु के भेद से अपने को (वा अपनी चेतन-वृत्ति को) समेटकर अर्थात् सफरी बनाकर सुषुम्ना-नल के निचले द्वार पर थिर रखे, तो जिस तरह जल के सम्मुख प्रवाह में पोठी मछली भाठे से सिरे को चढ़ जाती है, उसी तरह वह प्रकाश-रूप चेतन के सम्मुख प्रवाह में-स्थूल से सूक्ष्म में, अन्धकार से प्रकाश में, पिण्ड से ब्रह्माण्ड में, भाठे से सिरे को चढ़ जाएगा। 'पवनहुँ ते ऊतावला, धूआँ हू ते छीन। पुहुप बास ते पातला, दोस्त कबीरा कीन।।' इस साखी में वर्णित स्वरूप सुरत वा चैतन्य-वृत्ति का है। सिमटाव में आगे बढ़ाने का स्वभाव है। (अन्दाजी विन्दु नहीं) असली विन्दु पर जमने से पूर्ण सिमटाव होता है। इसलिए पिण्ड वा अन्धकार में पूर्ण सिमटाव होने पर इससे आगे की ओर प्रकाश में बढ़ने का कितना तीव्र बल सुरत में हो जाएगा, इसको बुद्धिमान विचार कर सकते हैं और भेदी अभ्यासी भक्त इसका प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं। तात्पर्य कहने का यह है कि जैसे मछली को पानी की उलटी धार पर जाने का अपना बल होता है, उसी तरह ऊपर कहे अनुसार सुरत को भी चेतना की उलटी धार में जाने का अपना बल प्राप्त हो जाता है। पानी अपने स्वभाव से अपने उद्गम-स्थान में मछली को आकर्षित नहीं करता है, पर ज्योति अपने स्वभाव से ही सुरत को ऐसा करती है। इसलिए उपर्युक्त प्रकार से सुरत को आगे बढ़ने में प्रथम तो सिमटाव-वाला केवल अपना बल लगता है, बाद को जब

ज्योति और शब्द की धारें उसे मिलती हैं, तब तो कहना ही क्या ! तब वह (सुरत) प्रभु के स्वरूपों की ओर ब्रह्मज्योति और ब्रह्मशब्द के आकर्षण से खिंचती हुई और प्रभु के सब सगुण रूपों के दर्शन और प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करती हुई उनके स्वरूप–सहज निर्गुण आत्मस्वरूप को प्राप्त कर, उन्हें आत्मसमर्पण कर, अतिशय द्वैत-वियोगी हो, 'जानत तुम्हहिँ तुम्हइ होइ जाई' वाला पद प्राप्त कर लेती है। जिसकी सुरत उपर्युक्त सफरी नहीं बनेगी, हाथी बनी रहेगी अर्थात् अहंकारी और फैली हुई रहेगी, उसका नल-प्रवाह की सम्मुख धार में कहाँ गुजरेगी ? वह तो गंगा की तरह चौड़ी मायाधार में ही बह जाएगी और उसकी ऊपर कथित सफरीवत् ऊर्ध्वगति नहीं होगी। कथित प्रकार से अधर-धारों को धर, भाठे से सिरे की ओर मछली की तरह जाने के मार्ग को कितने संत मीन-मार्ग कहते हैं। 'सुखमन के झीना नाल से अमृत की धारा बहि रही। मीन सूरत धार धर भाठा से सीरा चढ़ि रही।।' इसी प्रसंग को बयान करता है। मीन-मार्ग का आरंभ छठे चक्र वा आज्ञाचक्र से होता है और इस पर चलनेवाली सुरत एक सूक्ष्माकाश से दूसरे सूक्ष्माकाश में उड़ती हुई निर्दिष्ट स्थान को जा पहुँचती है। इसलिए इसका एक दूसरा नाम विहंगम-मार्ग भी है।

जड़-धार बालू है और चेतन-धार चीनी है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों में इनका मिश्रण है। जो सूक्ष्म पिपीलिका (छोटी चींटी) बनेगा अर्थात् अपनी सुरत को समेटेगा, वह जड़-धार से चेतन-धार को चुन, पृथक कर ग्रहण करेगा और

वह उससे उपर्युक्त लाभ उठावेगा। श्रीमद्भगवद्गीता के षष्ठ अध्याय में कथित दृष्टि-साधन द्वारा ध्यानयोग ही विहंगम-मार्ग है। इस साधन में यह आवश्यक नहीं है कि पिण्ड में नीचे के पाँचो चक्रों में होकर पिपीलक-मार्ग पर श्वास की कसरत वा प्राणायाम से चलकर तब आज्ञाचक्र में पहुँचकर, उपर्युक्त विहंगम-मार्ग को पकड़ा जाए। यदि इस कथित रीति से निचले पाँचों चक्रों में होकर चले बिना छठे चक्र में साधन बन नहीं सकता, तो श्रीमद्भगवद्गीता में नासाग्र (षष्ठ चक्र-संबंधी स्थान) से ही साधन आरंभ करने की आज्ञा कदापि नहीं होती। दृष्टि-साधन द्वारा नेत्र के नीचे की सब इन्द्रियों की चेतन-धारें सहज ही आज्ञाचक्र में सिमट आती हैं (पद्य १ के विचार में पढ़िए) और प्राणायाम द्वारा निचले चक्रों का साधन इसी हेतु करना है; इसलिए विहंगम-मार्गी को पिपीलक-मार्ग चलने की आवश्यकता नहीं होती है। भक्त पिपीलक-मार्ग पर चलने को हठयोग की क्रियाओं को नहीं करे तो कोई हानि नहीं। उसको तो नवधा भक्ति का अवलम्बन अवश्य चाहिए। गोस्वामीजी के रामचरितमानस के अनुसार नवधा भक्ति के साधु-संग करना, कथा-प्रसंग में रत होना, गुरु-सेवा में रत होना, कपट छोड़कर प्रेम से गुण-गान करना और मंत्र-जप करना; इन प्रथम पाँचो स्थूल भक्ति-साधनों को करने की पूरी आवश्यकता है। इन पाँचो स्थूल भक्ति-साधनों से सुरत प्रभु-चरणों की विशेष प्रेमिन, विषयों से बचने का यत्न करनेवाली, कोमल, दीन और अन्तर में सिमटाव के लिए तत्पर हो जाती है। अब इसको सूक्ष्म भक्ति में प्रवेश करना

सरल हो जाता है। नवधा भक्ति की छठी भक्ति से सूक्ष्म भक्ति का आरंभ है। रा० च० मा० सा० स० में इस प्रसंग को पढ़कर जान लीजिए। दृष्टियोग से आज्ञाचक्र वा षष्ठ चक्र में सिमटकर मीन-मार्ग वा विहंगम-मार्ग को धरकर चलना, सूक्ष्म भक्ति का आरंभ करना है। दृष्टियोग से नासाग्र कहलानेवाले जिस विन्दु को ग्रहण करना होता है, उसका स्थान, बाहरी सब इन्द्रियों (जहाँ सुरत का पसार रहने से जाग्रत अवस्था रहती है), कण्ठ और हृदय चक्रों (जहाँ पर जाने से स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्थाएँ होती हैं) से अन्तर में भिन्न है। इसलिए इस स्थान तक पहुँच होते ही भक्तयोगी की जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति; तीनों अवस्थाएँ दूर हो जाती हैं। वह तीनों अवस्थाओं को छोड़कर, चौथी अवस्था तुरीय को प्राप्त होकर भगवन्त का भजन कर सकता है। वह नींद छोड़कर सो जाता है और अपने अन्तर में ही प्रभु की विराट विभूति अर्थात् सारे-के सारे विश्व का दर्शन पाता है। सर्वव्यापी होने के कारण प्रभु विन्दु-व्यापी और विन्दु-रूपी भी हैं। विन्दु उनका वह रूप है, जिसका ध्यान करने की आज्ञा मनुस्मृति के १२ वें अध्याय के १२१ और १२२ आदि श्लोकों में अणु-से-अणु रूप कहकर दी है। इसका विशेष वर्णन रा० च० मा० सा० स० की चौपाई सं० ५ के विचार में पढ़ लीजिए। (अन्दाज से इसका ध्यान नहीं हो सकता। यह गुरु-गम्य है)। परम श्रद्धेय संत सद्गुरु बाबा देवी साहब ने एक दिन कृपा कर कहा था कि 'छठे चक्र का केन्द्र-विन्दु प्रभु के महल का फाटक है। जो परम प्रेमी और अभ्यासी भक्त परम विरही होकर प्रभु-दर्शनों

के लिए इस द्वार पर धरना देता है, द्वार की ओर एक नजर से देखता रहता है, वहाँ से बारहाँ धकियाए जाने पर भी बारम्बार वहाँ ही जा पड़ता है, यदि वह उस द्वार से अपनी नजर को नहीं विचलाता है, तो प्रभु उस पर द्रवे बिना नहीं रह सकते हैं और वे अपनी विन्दु-रूप विभूति को उसकी अगवानी के लिए भेज देते हैं, जो अंधकार के वज्र-कपाट को खोलकर उसे प्रभु के पास ले जाता है।' प्रभु की दृश्य-विभूति भेदमयी है। भक्तयोगी इससे और आगे बढ़ता है। एकरस रहनेवाले ध्वन्यात्मक रामनाम (जिसे सत्यनाम और सारशब्द आदि भी कहते हैं।) को धरकर प्रभु की अरूप-विभूति का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए अन्त में द्वैत, द्वन्द्व, काल और देश से अतीत पदवाले प्रभु के अकथ, अमायिक, निर्गुण स्वरूप में आत्म-समर्पण कर और निज संशयों को निर्मूल बना, हरिपद के परम सुख का वह भक्त-योगी अनुभव करता है।

## ( ११ )

**श्री हरि गुरु पद कमल भजहिं, मन तजि अभिमान ।**
**जेहि सेवत पाइय हरि, सुख निधान भगवान ।।१।।**

हे मन ! अहंकार छोड़कर हरि-रूप श्री गुरु महाराज के चरणकमल की सेवा कर, जिनकी सेवा से सुख के भंडार हरि-भगवान को पावेगा।।१।।

**परिवा प्रथम प्रेम बिनु, राम मिलन अति दूर ।**
**जद्यपि निकट हृदय निज, रहे सकल भरपूर ।।२।।**

**परिवा**-पहली बात यह है कि बिना प्रेम के राम से

मिलना अत्यन्त दूर है, यद्यपि राम निकट ही अपने हृदय में और सबमें परिपूर्ण रहते हैं।।२।।

**दुइज द्वैत-मत छाड़ि, चरहि महि मंडल धीर ।**
**विगत मोह माया मद, हृदय सदा रघुवीर ।।३।।**

द्वैत मत = स्व-पर-भेद।

**द्वितीया**—जो द्वैत मत छोड़कर मोह, माया और मद को त्याग कर और हृदय में सदा राम को धारण किए रहकर संसार में विचरते हैं, वे धीर हैं।।३।।

**तीज त्रिगुन पर परम पुरुष, श्री रमन मुकुन्द ।**
**गुन सुभाव त्यागे बिना, दुरलभ परमानन्द ।।४।।**

मुकुन्द = मोक्ष-दाता।

**तृतीया**—मोक्षदाता परम पुरुष लक्ष्मीपति तीनों गुणों के परे हैं। गुण और प्रकृति को बिना छोड़े परमानन्द—मोक्ष का मिलना दुर्लभ है। (अर्थात् रज, सत्त्व, तम; तीनों गुणों को वा त्रिकुटी को और प्रकृति को छोड़े बिना मोक्ष मिल नहीं सकता है)।।४।।

**चौथ चारि परिहरहु, बुद्धि मन चित अहंकार ।**
**विमल विचार परमपद, निज सुख सहज उदार ।।५।।**

**चतुर्थी**—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार; इन चारों को छोड़ दो, तो पवित्र विचार, मोक्ष और आत्मानन्द का स्वाभाविक उदार सुख प्राप्त हो।।५।।

मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार (चारो अन्तःकरण) त्रिकुटी के पार होने पर छूटते हैं। 'मन बुधि चित्त हंकार की, है त्रिकुटी लग दौर। जन दरिया इनके परे, ररंकार का ठौर।।'

ररंकार = ध्वन्यात्मक रामनाम।

**पाँचइ पाँच परस रस, सब्द गन्ध अरु रूप ।**
**इन्ह कर कहा न कीजिये, बहुरि परब भव-कूप ।।६।।**

**पाँचवीं**—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द; इन पाँचो के आकर्षण से बचो, नहीं तो बारम्बार जन्म-मरण के कूप में गिरोगे।।६।।

**छठि षड़बरग करिय जय, जनक-सुता-पति लागि ।**
**रघुपति कृपा-बारि बिनु, नहिं बुझाइ लोभागि ।।७।।**

**षष्ठी**—राम को प्रसन्न करने के लिए काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और मत्सर (डाह) को जीतो। लोभ-रूपी अग्नि राम के कृपा-रूप जल के बिना नहीं बुझती है।।७।।

**सातइँ सप्तधातु निरमित, तनु करिय विचार ।**
**तेहि तनु केर एक फल, कीजिये पर उपकार ।।८।।**

**सप्तमी**—विचारना चाहिए कि जो शरीर (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य) सात धातुओं से बना है, उसका एक ही फल परोपकार करना है।।८।।

**आठइँ आठ प्रकृति पर, निरविकार श्री राम ।**
**केहि प्रकार पाइय हरि, हृदय बसहिं बहु काम ।।९।।**

**अष्टमी**—विकार-रहित राम, आठो प्रकृति (मिट्टी, जल, हवा, अग्नि, आकाश, मन, बुद्धि एवं अहंकार) से आगे हैं। उन हरि (राम) को किस तरह पा सकते हैं, जबकि हृदय में बहुत-सी इच्छाओं का वासा हो।।९।।

**नवमी नवद्वार-पुर बसि, न आपु भल कीन ।**
**ते नर जोनि अनेक भ्रमत, दारुन दुख दीन ।।१०।।**

**नवमी**—नौ दरवाजों वाले नगर (शरीर) में रहकर, जिन्होंने अपनी भलाई नहीं की, उन मनुष्यों ने अनेक योनियों में भ्रमते हुए अपने को कठिन दुःख दिया॥१०॥

**दसइँ दसहु कर संजम, जौं न करिय जिय जानि।**
**साधन वृथा होइ सब, मिलहिं न सारंगपानि॥११॥**

**दशमी**—यदि मन में आवश्यक जानकर दसो इन्द्रियों का संयम नहीं कीजिए (उन्हें भोगों से नहीं रोकिए), तो सब साधन व्यर्थ होंगे और भगवान नहीं मिलेंगे॥११॥

**एकादशी एक मन, बस कैसहुँ करि जाइ।**
**सो व्रत कर फल पावइ, आवागमन नसाइ॥१२॥**

**एकादशी**—एक मन को किसी तरह वश में किया जाए, तो इस व्रत का यह फल पावेगा कि आवागमन मिट जाएगा॥१२॥

**द्वादसि दान देहु अस, अभय होय त्रय लोक।**
**परहित-निरत सुपारन, बहुरि न व्यापइ सोक॥१३॥**

**द्वादशी**—ऐसा दान दो कि (पानेवाला) तीनों लोकों में निर्भय हो जाए। (ज्ञान का दान देने से त्रयलोक में अभय होगा) और परोपकार करने में लौलीन रहने का पारण करो, तो फिर दुःख नहीं व्यापेगा॥१३॥

**तेरसि तीन अवस्था, तजहु भजहु भगवन्त।**
**मन क्रम वचन अगोचर, व्यापक व्याप्य अनन्त॥१४॥**

**त्रयोदशी**—जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति—तीनों अवस्थाओं को छोड़कर भगवान का भजन करो। वे (भगवान) मन, कर्म और वचन को प्रत्यक्ष नहीं होनेवाले, अन्तरहित, व्यापक और

व्याप्य-रूप हैं।।१४।।

व्यापक = ब्रह्म = सबमें, फैलनेवाले = मोहीत कुल्ल। व्याप्य = प्रकृति = ब्रह्म के व्यापक होने का समस्त स्थान = मोहात।

(तीनों अवस्थाओं को छोड़ने का वर्णन पद्य १० के विचार में लिखा जा चुका है।)

**चौदसि चौदह भुवन, अचर चर रूप गोपाल ।**
**भेद गये बिनु रघुपति, अति न हरहिं जग जाल ।।१५।।**

चतुर्दशी–चौदहो लोक और स्थावर-जंगम-रूप श्रीकृष्ण भगवान हैं। द्वैत बुद्धि के नाश हुए बिना रघुपति राम संसार के जाल का अत्यन्त नाश नहीं करते हैं।।१५।।

**पूनो प्रेम-भगति-रस, हरि रस जानहिं दास ।**
**सम सीतल गत-मान, ज्ञान-रत विषय-उदास ।।१६।।**

**पूर्णिमा**–जो भक्त सम, शीतल, निरभिमानी, ज्ञान में मग्न और विषयों से विरक्त हैं, वे ही प्रेम-भक्ति के सार ब्रह्म-पीयूष को जानते हैं।।१६।।

भगति-रस = भक्ति का सार। हरि-रस = ब्रह्म-पीयूष (इसका वर्णन पद्य ६ में है)।

**त्रिविध सूल होली जारिय, खेलिय अस फागु ।**
**जौं जिय चहसि परम सुख, तौ एहि मारग लागु ।।१७।।**

ऐसा फगुआ खेलिए कि जिससे तीनों तापों का होलिकादाह कर दीजिए। हे जीव ! यदि तू मोक्ष चाहता है, तो इसी पथ पर चल।।१७।।

**स्त्रुति पुरान बुद्ध सम्मत, चाँचरि चरित मुरारि ।**
**करि विचार भव तरिय, परिय न कबहुँ जमधारि ॥१८॥**

वेद, पुराण और बुद्धिमानों का विचार यह है कि भगवान के चरित्र-रूप चाँचरि राग का विचार करो, तो फिर कभी भवसागर में नहीं गिरोगे।।१८।।

**संसय समन दमन दुख, सुख निधान हरि एक ।**
**साधु-कृपा बिनु मिलहिं नहिं, करिय उपाय अनेक ॥१९॥**

संशयों के नाश करनेवाले, दु:खनिवारक और सुख के भण्डार एक ही हरि हैं। साधु की कृपा बिना, चाहे अनेकों यत्न कीजिए, वे नहीं मिलते हैं।।१९।।

**भवसागर कहँ नाव सुद्ध, सन्तन्ह के चरन ।**
**तुलसिदास प्रयास बिनु, मिलहिं राम दुख हरन ॥२०॥**

संसार-समुद्र पार होने के लिए संतों का पवित्र चरण नाव है। हे तुलसीदास ! इनके सहारे बिना परिश्रम के ही दु:खों के हरनेवाले राम मिलते हैं।।२०।।

**( १२ )**

**एहि तें मैं हरि ज्ञान गँवायो ।**
**परिहरि हृदय-कमल रघुनाथहिं,**
**बाहर फिरत विकल भय धायो ॥१॥**

मैं भव-भय से व्याकुल हो राम की खोज अपने हृदयकमल में न करके बाहर-बाहर दौड़ता फिरा, इसलिए मैंने उन (हरि वा राम) का ज्ञान गँवा दिया।।१।।

**ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद,**
**अति मतिहीन मरम नहिं पायो ।**

**खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल,**
**परम सुगंध कहाँ तें आयो ॥२॥**

जैसे अत्यन्त मूर्ख मृग ने अपनी देह की सुगन्धित कस्तूरी का भेद नहीं पाया और जब उसकी सुगंध उसे जान पड़ी, तब वह पहाड़, गाछ, लता, मिट्टी और बिल में खोजता है कि यह सुगन्ध कहाँ से आई ? (ईश्वर को बाहर में खोजकर मैं वैसे ही मृगवत् हुआ। ईश्वर को बाहर में खोजना अति मतिहीनता है)।।२।।

**ज्यों सर विमल बारि परिपूरन,**
**ऊपर कछु सेंवार तृन छायो।**
**जारत हियो ताहि तजिहौं सठ,**
**चाहत एहि विधि तृषा बुझायो ॥३॥**

जैसे तालाब स्वच्छ जल से भरा हो, जल के ऊपर कुछ सेंवार और खढ़ पसर गए हों। सेंवार और खढ़ से आवरणित होने के कारण तालाब में जल को नहीं जानकर मैं मूर्ख प्यास से हृदय को जलाता हूँ और इसी तरह (बिना उस जल को पिए) प्यास को बुझाना चाहता हूँ।।३।।

**व्यापित त्रिविध ताप तन दारुन,**
**तापर दुसह दरिद्र सतायो।**
**अपने धाम नाम सुरतरु तजि,**
**विषय बबूर बाग मन लायो ॥४॥**

देह में कठिन तीनों ताप व्यापते हैं। उसपर और भी दुःसह दरिद्रता सता रही है। अपने ही (शरीर-रूपी) घर में नाम-रूपी कल्पवृक्ष को छोड़कर मैंने विषय-रूप बबूल के

जंगल में मन लगाया है।।४।।

**तुम्ह सम ज्ञान निधान मोहि सम,**
**मूढ़ न आन पुरानन्हि गायो।**
**तुलसिदास प्रभु यहि विचारि जिय,**
**कीजै नाथ उचित मन भायो।।५।।**

हे राम ! आपके समान ज्ञान का भंडार और मुझ-सा मूर्ख पुराणों में दूसरा नहीं गाया गया है। तुलसीदासजी कहते हैं कि हे प्रभु ! ऐसा विचारकर जो नाथ के मन को उचित जँचे और पसन्द हो, सो कीजिए।।५।।

**विचार**–इस पद्य से सिद्ध होता है कि गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज को तबतक राम नहीं मिले थे, जबतक वे बाहर-बाहर उन्हें खोजते थे। यह बात वे तभी व्यक्त कर सके होंगे, जब वे अपने अन्दर में राम को पा गए होंगे। कबीर साहब की ये साखियाँ इस पद्य के अनुकूल ही हैं–'कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूँढ़ै वन माहिं। ऐसे घट में पीव है, दुनियाँ जानै नाहिं।। तेरा साईं तुज्झ में, ज्यों पुहुपन में बास। कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिरि फिरि ढूँढ़ै घास।। ज्यों नैनन में पूतरी, यों खालिक घट माहिं। मूरख लोग न जानहीं, बाहर ढूँढ़न जाहिं।। समझे तो घर में रहे, परदा पलक लगाय। तेरा साहब तुज्झ में, अनत कहूँ मत जाय।।'

हृदय-रूपी सरोवर में निर्मल जल-रूप राम भरे हैं। उस पर सेंवार और तृण-रूप मायिक आवरण स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूपों में आच्छादित हैं। 'हृदय यवनिका बहुविधि लागी।' (रा० च० मा०) इन आवरणों को, गोस्वामी तुलसीदासजी

योग–युक्ति–द्वारा राम–भजन कर अन्तर का भेदी भक्त बन, अवश्य ही छेदन किए होंगे और राम को अपने अन्तर में पाए होंगे, तालाबवाली उपमा से यही विचार सिद्ध होता है। अन्तर में राम को नहीं खोजनेवाले, उपासना के अन्तर–मार्ग पर नहीं चलनेवाले, केवल बाहर–बाहर राम को खोजनेवाले, केवल बाहरी ही उपासना में रत रहनेवाले को गोस्वामीजी महाराज संकेत से मूर्ख कहते हैं। गोस्वामीजी महाराज का यह पद्य अन्तर–उपासना की ओर अत्यन्त जोर दे रहा है। इस पर भी इनको अगर कोई केवल बाहरी उपासना का प्रचारक माने, तो 'यह उनका भ्रम है', कहने के सिवा और क्या कहा जाएगा ? अन्तर में राम हैं, तो उनके नाम का भी अन्तर में होना परम युक्ति–युक्त ही है। राम अन्तर की सब तहों में, सब स्थानों में, सब चक्रों में, सब कमलों में, सब शून्यों में, सब वर्गों में और सब पदों में, स्थानों के स्थूल, सूक्ष्म, कारण, आत्म, सगुण और निर्गुण भेदानुसार, रूपों से विराजते हैं और तब उनका नाम भी, स्थानों और राम के रूपों के स्थूल–सूक्ष्म आदि भेदों के अनुसार ही भेदोंवाला वर्णात्मक, श्रवणात्मक, ध्वन्यात्मक, सुरतात्मक, सगुण, अगुण, हत और अनहद रूपों में है। बहुत–से लोग नहीं जानते, नहीं मानते और नहीं विचारते हैं। इसका कारण यह है कि भक्ति–मार्ग में वे ऐसा विश्वास ही नहीं करते हैं कि स्थूल उपासना से जितना अन्तर्मुख होना सम्भव है, उससे उत्तरोत्तर विशेष–से–विशेष अन्तर में आगे बढ़ते हुए उसके अन्त तक पहुँचना, अतिशय द्वैत–वियोगी बनना और देश–कालातीत त्रयवर्ग–पर (चौथे

पद) तक जाकर परम सुख प्राप्त करने के हेतु परम प्रभु राम के स्वरूप (निर्गुण स्वरूप) को प्राप्त करना है। ये जब गो० तुलसीदासजी महाराज और इनके तुल्य दूसरे संतों की भक्ति की अन्तर्मुख उपासनावाली बातों को मानें और अपने अन्तर में साधु की 'सद्युक्ति' का साधन करें, तब इन्हें उपर्युक्त विषय का स्वयं अनुभव हो जाएगा। पद्य में कहा गया है कि अपने ही धाम में नाम-रूपी कल्पवृक्ष है। गोस्वामीजी महाराज ने इस पद्य में शरीर के अन्दर की उपासना की निसबत वर्णन किया है, इसलिए धाम वा घर यहाँ पर अपने शरीर के अतिरिक्त वह घर वा धाम नहीं माना जा सकता है कि जिसमें शरीर रहता है, और तब नाम भी केवल वर्णात्मक ही नहीं माना जाएगा, वह ऊपर कथित अपने ध्वन्यात्मकादि सब रूपों में माना जाएगा; क्योंकि शरीर के सब पदों वा तहों में वर्णात्मक नाम का उच्चारण होना असम्भव है। वर्णात्मक नाम परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी–इन चारो वाणियों के अन्तर्गत ही रहता है। शरीर में जहाँ इन चारो वाणियों की गति नहीं, वहाँ वर्णात्मक नाम का उच्चारण-भजन नहीं। शरीर के अन्तर का यहीं तक (जहाँ तक वर्णात्मक नाम का भजन हो सकता है) अन्त नहीं है (सत्संग-योग के सांकेतिक चित्र में देखिए)। तब शरीर के अन्तर के इससे आगे की तहों में वर्णात्मक नाम-बिना नाम-भजन करना, गोस्वामीजी महाराज सरीखे अन्तर-मार्गी परम भक्त संतों के लिए अशक्य हो जाएगा, यदि ये उपर्युक्त कथन के अनुसार नाम को ध्वन्यात्मक आदि भेदों और रूपों में नहीं जानें और नहीं मानें। गोस्वामीजी

महाराज नाम के ध्वन्यात्मक आदि भेदों को जानते और मानते थे, इसीलिए तो उन्होंने रामचरितमानस में नाम को अगुण और अकथ भी कहा है। दूसरी बात यह है कि गोस्वामीजी महाराज ने रामचरितमानस में स्वीकार किया है कि उन्होंने योग को उसकी कथाओं के अन्दर गुप्त रीति से वर्णन किया है। और योग से सुरत-शब्द-योग (ध्वन्यात्मक नाम-भजन) को बाहर निकाल देने से योग अपनी ऊँची-से-ऊँची गति से नहीं पहुँच सकता है, जहाँ तक कि गोस्वामीजी महाराज की पहुँच थी। और गोस्वामीजी महाराज ने रामचरितमानस में यह कहा भी नहीं है कि इसमें शब्दयोग का वर्णन नहीं करता हूँ। इस कारण से भी यह मानना ही पड़ता है कि गोस्वामीजी महाराज सुरत-शब्द-योग वा हत, अनहत, अनहद, सगुण और अगुण ध्वन्यात्मक रामनाम का भजन जानते थे और करते थे। गोस्वामीजी महाराज वैष्णव सम्प्रदाय के संत थे। आज भी बहुत-से वैष्णव साधु अपने कानों में तुलसी की लकड़ी की बनी हुई 'कूची' (अन्तर में ध्वन्यात्मक शब्द या नाम का भजन करने के हेतु बाहर के शब्दों को अपने अन्दर में नहीं आने देने के लिए कानों के छेदों को बन्द करने की उपर्युक्त कीलें) लटकाए हुए देखे जाते हैं। इसलिए यह बात किसी प्रकार नहीं कह सकते हैं कि गोस्वामीजी महाराज ध्वन्यात्मक रामनाम का मर्म नहीं जानते थे और इसका वर्णन इन्होंने संकेत में भी नहीं किया है। जैसे वर्णात्मक नाम का भजन प्रथम अवश्य ही करना चाहिए, वैसे ही अन्त में ध्वन्यात्मक नाम का भी भजन करना चाहिए। वर्णात्मक नाम अपने अर्थ

द्वारा गुण प्रगट करके नामी का केवल परोक्ष ज्ञान देता है और ध्वन्यात्मक नाम अपने आकर्षण-द्वारा सुरत को नामी तक एकदम पहुँचाकर उसके अपरोक्ष ज्ञान का अनुभव करा देता है। यदि वर्णात्मक नाम को भजने से नामी के नराकृति वा देवाकृति सगुण रूप का दर्शन मिल जा सकता है, तो जानना चाहिए कि इस दर्शन से भी नामी के स्वरूप का परोक्ष ही ज्ञान हुआ, इनके अपरोक्ष ज्ञान का अनुभव करा देना केवल वर्णात्मक नाम से कदापि सिद्ध नहीं हो सकता है। कोई वर्णात्मक शब्द, किसी का नाम इसलिए कहलाता है कि उस शब्द से वह जाना जाता है। इसी प्रकार ध्वन्यात्मक राम शब्द वा रामनाम से राम अपरोक्ष ज्ञान-द्वारा पूर्ण अनुभव किए जाते हैं, इसीलिए यह उनका ध्वन्यात्मक नाम हुआ। नाम के वर्णन की ऊपर कथित बातों को यदि कोई अपने अनजानपन से हठपूर्वक नहीं मानता है, तो वह भक्ति-मार्ग में अपनी उन्नति रोकने के अतिरिक्त और कुछ लाभ नहीं उठाता है।

**॥ विनय-पत्रिका-सार सटीक समाप्त ॥**